डा० कुमारी चन्द्रा
हिन्दी विभाग,
महाराजा कॉलेज

B.A.
SEM-III
Paper-14

प्रश्न (5) टी० एस० इलियट की परंपरा और प्रज्ञा संबंधी अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: सामान्यता पाश्चात्य साहित्य जगत में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में स्वच्छन्दवाद (रोमांटिसिज्म) का आधिपत्य सा रहा पर धीरे-धीरे उसमें त्रुटियों का समावेश होने लगा और इलियट ने स्वच्छन्दतावाद के दीर्घकालीन आधिपत्य एवं अस्वस्थ रूप को स्वीकार करते हुए शास्त्रवाद या क्लासिक मत का प्रतिपादन किया है। अतएव उसने वैयक्तिकता की बढ़ती हुई भावनाओं को व्यवस्था कायम रखने के लिए और अनेकता को एकता में बाँधने के लिए परंपरा का सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए कहा कि परंपरा का काव्य सृजन में प्रमुख स्थान है और कवि की प्रतिभा केवल मध्यस्थ रूप में परंपरा को ही काव्य में प्रतिफलन केवल मध्यस्थ रूप से परम्परा को ही होने के कारण सहायता प्रदान करती है। इस प्रकार इलियट ने प्रतिभा के स्थान पर परम्परा को महत्व दिया और मस्तिष्क को सक्रिय शक्ति न मानकर उसे प्रभावों को ग्रहण करनेवाली निष्क्रिय शक्ति का तथा काव्य के कर्त्ता को व्यक्तित्व की सच्ची अभिव्यक्ति को दबाने की बात कही।

वस्तुतः परम्परा से इलियट का अभिप्राय प्राचीन पीढ़ी या पीढ़ियों की काव्य प्रवृत्तियों का निष्क्रिय अनुगमन नहीं और सन् 1919 में प्रकाशित अपने एक निबंध में उसने यही कहा है परंपरा अत्यंत महत्वपूर्ण वस्तु है। इसे विरासत के रूप में उपलब्ध नहीं किया जा सकता है। यदि कोई इसे प्राप्त करना चाहता है तो उसे श्रम करना होगा। इसके लिए यदि सर्वप्रथम ऐतिहासिक बोध की आवश्यकता है। ऐतिहासिक बोध का अर्थ है न केवल अतीत को उसके अतीत्व में देखना, वरन उसे उसके वर्तमान को देखना है।"

संक्षेप में एलियट की परंपरा और प्रज्ञा संबंधी मान्यताओं को इस प्रकार रखा जा सकता है —

(1) यूरोपीय परंपरा पर विचार करते हुए इलियट का मानना है कि 'प्रत्येक राष्ट्र प्रत्येक प्रजाति की अपनी सर्जनात्मक ही नहीं, आलोचनात्मक मानसिकता भी हुआ करती है।

(2) किसी रचनाकार की महत्व प्रतिष्ठा करते समय हम प्राय: उसकी वैयक्तिक विशेषताएँ खोजकर दिखाने का प्रयत्न करते हैं। और कवियों से उनकी भिन्नता पहचानने में ही हमें प्रसन्नता होती है। यदि हम ठीक से खोज करें तो पाएँगे कि किसी कवि की रचना के श्रेष्ठ ही नहीं, सर्वथा वैयक्तिक पक्ष भी वही होते हैं जिनमें उसके पूर्ववर्ती रचनाओं का प्रभाव प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ है। वैयक्तिक ~~परंपरा~~ प्रज्ञा परंपरा से अलग वस्तु नहीं है। तभी तो रामकाव्यपरंपरा से जुड़कर तुलसीदास ने रामचरितमानस और निराला ने राम की शक्ति पूजा जैसे काव्य की रचना की।

(3) परंपरा का अर्थ है - इतिहास बोध। कवि में इतिहास बोध होना चाहिए। कवि को सिर्फ अतीत का ही नहीं बल्कि वर्तमान का भी अनुभव होना चाहिए। हिन्दी में ऐसी ही परंपरा अज्ञेय और जयशंकर प्रसाद के सृजन कर्म में दिखायी देता है। इलियट यदि अपने सृजन में अपने पुरखों आदि को बोलते पाते हैं तो हम प्रसाद जी के सृजन में अपने वैदिक ऋषियों की वाणी को अनुगूँज सुनते हैं। यूरोप में इतिहास के बोझ से त्रस्त इलियट को भी परंपरा बोध में एक ऐसा तर्क मिला जो उन्हें अनैतिहासिक करार दिए बिना इतिहास बोध दे। यही कारण है कि परंपरा की संज्ञा देना ही समीचीन नहीं है। वस्तुत: परंपरा एक सत्य है, निरंतरता है, अविच्छिन्न प्रवाह है जो अतीत के साहित्यिक सांस्कृतिक धरोहर के सम्पन्न बनाती है।

(4) इलियट परंपरा को मृत वस्तु नहीं मानते हैं। जो मृत या निरर्थक है उसे परंपरा की संज्ञा देना ही समीचीन नहीं है। वस्तुत: परंपरा एक सत्य है, निरंतरता है, अविच्छिन्न प्रवाह है जो अतीत के साहित्यिक सांस्कृतिक वैभव के उत्तमांश से वर्तमान को सम्पन्न और सार्थक

बनाती है तथा भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। इस दृष्टि से परंपरा का विस्तार देश और काल दोनों में होता है।

(5) किसी भी कवि या कलाकार की अर्थवत्ता केवल अपने आप अकेलेपन में नहीं होती। उसकी सही अर्थवत्ता, उसकी प्रशंसा दिवंगत पूर्ववर्ती कवियों या कलाकारों की तुलना में ही होती है।

(6) रचनाकार के लिए परंपरा साँस की तरह सहज स्वाभाविक, अनिवार्य और नैसर्गिक क्रिया है। कुछ भी सोचते सुनते पढ़ते समय उसके गुण-दोष का अहसास मानव विवेक स्वयं करता है। अभिव्यक्ति या रचना प्रक्रिया में कभी प्रक्रिया मौन रहती है कभी मुखर। कभी संघर्ष की मुद्रा में होती है कभी विपरीत दिशा में।

(7) परंपरा के प्रति गहरे लगाव का अर्थ हठवादिता या अंधानुकरण एकदम नहीं है। अंधानुकरण से मौलिकता नष्ट हो जाती है। परंपरा की व्यापक अर्थवत्ता तो स्वयं कवि की नवीनता, मौलिकता में ही परिपाकित होती है। एलियट ने जोर देकर कहा कि परंपरा को दायाद या विरासत के रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता, उसकी प्राप्ति के लिए कठोर तप-साध्यता या श्रम आवश्यक है।

(8) ध्यातव्य है कि कवि को अतीत का परंपरा का ज्ञान तो होना चाहिए परंतु यह ज्ञान इतना भारी न पड़े कि कवि-चेतना को अकांत कर दे। प्रायः बहुत बार अतिशय अतीत ज्ञान के बोझ से काल संवेदना दब सी जाती है या प्रभावहीन होकर बिखर जाती है। कवि के लिए अतीत की चेतना को विकसित करते रहना जरूरी है और उसे आजीवन विकसित करना है। कलाकार की प्रगति सतत आत्म बलिदान में है। व्यक्तित्व के सतत आत्म समर्पण में है। व्यक्तित्व के इस निर्वैयक्तिकरण से ही कला विज्ञान की स्थिति को प्राप्त कर सकती है।

सारतः कहा जा सकता है कि परंपरा और व्यक्तिगत प्रज्ञा एक दूसरे से संबद्ध हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना असंभव है।